भूमिका

समकालीन हिंदी कथा-साहित्य के चर्चित कथाकारों में संजीव का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अपने बहुआयामी प्रतिभा और संघर्षशील व्यक्तित्व के बल पर इन्होंने शताधिक कहानियों और दसियों से अधिक उपन्यास रचकर हिंदी साहित्य को बहुमूल्य अवदान दिया है। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से ये लगातार कथा-साहित्य रचने में सक्रिय रहे हैं और अभी इनके अपार लेखन की संभावनाएं हैं। अपनी पहली ही कहानी संग्रह **'तीस साल का सफ़रनामा'** में संग्रहीत कहानी **'अपराध'** के बल पर ये चर्चा में आ गये थे। तब से लेकर अब तक इनकी कलम की क्रांति अनवरत जारी है। इनके उपन्यास भी समाज की उन तमाम समस्याओं को उठाते हैं जिससे इनकी कहानियाँ जुझती हैं, पर संवेदनात्मक स्तर पर इनकी कहानियाँ अधिक प्रभावी रही हैं। परंतु वर्तमान पाठकों में ये मूलतः एक कथाकार के रूप में पहचाने जाते हैं।

संजीव विज्ञान के छात्र रहे हैं और नौकरी भी इन्होंने कोयलांचल के कुल्टी इस्पात कारखाने में केमिस्ट के पद पर की है। परंतु उनका सृजन क्षेत्र कला और साहित्य रहा है। विज्ञान ने उनके अंदर के साहित्यकार को कभी बाधित नहीं किया अपितु उन्हें बहुमुखी और जिज्ञासु बनाया। वे अपनी प्रत्येक रचना के लिये शोध से गुजरते हैं। वे जीवन-जगत में सत्य की तलाश के अन्वेषी हैं। भारतीय ग्राम उनके हृदय में रचता-बसता है। परिणामतः उनके कथा-साहित्य में 'देशीयता' है। उपन्यास लेखन को वे अपने लिये एक प्रोजेक्ट के समान मानते हैं यही कारण है कि इस विधा में भी उन्हें बहुप्रतिक्षित प्रतिष्ठा मिली है। अपने खोजी संस्कारों के कारण उन्होंने अनेक अनछुए और वर्जित क्षेत्रों को अपने कथा का आधार बनाया। उपेक्षित और अभिशप्त संदर्भों को अपनी लेखनी से वाणी देने वाले अपने आप को गँवई कहने वाले ये एक यथार्थवादी कथाकार हैं। महानगरीय जीवन और उसकी आपा-धापी इन्हें कभी भी रास नहीं आई। इसलिए इनके कथा-साहित्य में लोक जीवन और लोक संस्कृति के पुट लक्षित किये जा सकते हैं। वे किसी व्यक्ति की कथा न कहकर पूरे अंचल, भूखंड की बात करते हैं। 'दिखावा' या 'इमेज मैनजमेंट' से काफी दूर पद एवं पुरस्कार से अविरल रहकर वे एक

श्रमजीवी जनता की समस्याओं के लिये बेचैन कथाकार के रूप में साधारण जीवन व्यतीत करते हैं।

जातिवाद, सामंतवाद, पूंजीवाद, साम्राज्यवाद, विस्तारवाद और उपनिवेशवाद इनके लेखन के प्रमुख निशाने रहे हैं। अन्याय, शोषण और दमनचक्र के विरुद्ध वे डटकर खड़े हो जाते हैं। संजीव अपने कथा-साहित्य में दलित, आदिवासी, स्त्री, किसान, मजदूर, पहाड़, मछुआरों, स्पेश, अछूत लोग, अंधविश्वास, यूनियन, नेता, ठेकेदार, पूंजीपति, कलाकार, खदान मालिक, मलकट्टा, वकील, डाकू समस्या, वैज्ञानिकों का दोहन, वैज्ञानिक खोज, मैनेजमेंट का दमन, सर्कस मालिकों का अत्याचार, औद्योगिक कस्बे, खेत, तकनीकी, भूमिहीन मजदूर, आंदोलन, सगुनिये, बाजार का बढ़ता प्रभाव, ठेकेदारी प्रथा आदि प्रमुख विषयों को उठाते हैं। अपने आस-पास की स्थितियों-परिस्थितियों एवं हो रही घटनाओं से वे आँखें नहीं फेर पाते हैं। सामाजिक उत्पीड़न, मानवीय जलालत, गैर बराबरी, दमन और आर्थिक विषमता जैसे सवालों से एक सच्चे साहित्यकार का बच के निकलना मुश्किल है। चूंकि समाज और साहित्य का संबंध बहुत पुराना रहा है। प्रेमचंद जी के कुछ पूर्ववर्ती कथाकारों को छोड़ दें तो प्रेमचंद ने भी साहित्य में सामाजिक समस्याओं को ही आधार बनाया।

आजकल साहित्य विश्लेषण की प्राचीन परंपरा –आंतरिक संरचना यानी बिंब, प्रतीक, लक्षण, लय, भाषा, चरित्रांकन जैसी विशुद्ध साहित्यिक एवं सौंदर्यवादी दृष्टिकोण से उपर उठकर इसके समाजशास्त्रीय चिंतन पर जोर देने की आवश्यकता है। समाजशास्त्रीय चिंतन साहित्य को उसके सामाजिक जिम्मेदारियों से जोड़ता है जबकि विशुद्ध कलावादी इसे किसी चरित्रांकन, कथानक या रंगीन मिजाजी सामग्री के रूप में पेश करने से भी नहीं हिचकते हैं। मानवता की रक्षा, वर्ग-भेद, आर्थिक विषमता का विनाश, सामाजिक समधर्मिता की स्थापना, शोषण मुक्त समाज का निर्माण ही वह सौंदर्य है जिसे हम साहित्य के जरिये प्राप्त कर सकते हैं। अतः प्रस्तुत शोध-प्रबंध में संजीव के कथा साहित्य को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया जाएगा।

कथाकार संजीव को लेकर विद्वतजन में द्वन्द्व की स्थिति है कि वे एक सफल कहानीकार ज्यादा हैं या उपन्यासकार, क्योंकि **'मानपत्र', 'सागर सीमान्त', 'खोज', 'आविष्कार'** जैसी

संजीव की औपन्यासिक शिल्प लिए कुछ लंबी कहानियाँ भी हैं परंतु इन कहानियों को पढ़ते समय पाठकीय अभिरुचि थकने का नाम भी नहीं लेती है। यह उन्हें कहीं-न-कहीं कथाकार के रूप में ही प्रतिष्ठित करती है। उपन्यास लेखन के संबंध में वे लंबी होती कहानियों के कलेवर को मानते हैं। गिरिश काशिद को दिए एक साक्षात्कार में उन्होंने माना है कि उनकी हर कहानी में औपन्यासिक विस्तार है। उनका खोल भले ही कहानी का हो परंतु उसके 'कंटेन्ट' उपन्यास के होते हैं। समयाभाव के कारण उन्हें कहानी के कलेवर में बाँधना पड़ता है फिर भी कुछ कहानियाँ लंबी हो जाती हैं। उनकी कहानियाँ प्रभावात्मक हैं। वह न केवल पाठकों को बांधे रखने में सक्षम हैं बल्कि उनके जीवन को प्रभावित करने में भी सक्षम हैं। इसका मूल कारण उनके 'फिल्डवर्क' के साथ-साथ कठिन 'होमवर्क' है। वे चौबीसों घंटे अपने मन-मस्तिष्क में अपने पात्रों, घटनाओं एवं चरित्रों से जूझते रहते हैं तब जाकर कोई कालजयी रचना पाठकों के सामने प्रस्तुत होती है।

कथाकार भी आम लोगों की भाँति एक सामाजिक प्राणी है। संजीव का स्वयं मानना है कि वे अपने आस-पास फैले उनके अपने लोग और उनके इर्द-गिर्द पसरे नरक से आँखें नहीं मूंद सकते हैं। वे अपनी पहचान छुपा कर अपने अंचल के लोगों से खूब मिलते हैं और उनके दु:ख-सुख, जीवनचर्या एवं समस्याओं को रेखांकित कर अपने रचनाओं के माध्यम से वाणी देते हैं। **'सर्कस'** उपन्यास लिखने के लिए वे सर्कस कलाकारों से महीनों अंतरंग करते रहें तो **'सावधान! नीचे आग है'** उपन्यास के लिए ढेर सारी बीहड़, कोलियरियों की यात्राएँ कीं। **'सूत्रधार'** उपन्यास के लिए भिखारी ठाकुर के गाँव कुतूबपुर छपरा से लेकर सोनपुर के मेले तक भटकते रहें, उनके नाटक देखते रहें, जाजम पर सोते रहें, भिखारी ठाकुर को जानने वाले लोगों से सामग्री एकत्रित करते रहें तो **'जंगल जहाँ शुरू होता है'** उपन्यास के लिए कई-कई रोज तक जान-जोखिम में डालकर वनों में विचरते रहें। **'टीस'** कहानी लिखने के लिए उन्होंने सपेरों की बस्ती का भ्रमण किया और उनकी समस्याओं को उजागर किया। अत: एक जागरूक उपन्यासकार की भाँति उन्होंने समाज में व्याप्त सामंती शोषण, सर्कस के बाह्य चमक-दमक के साथ सर्कस कलाकारों की पीड़ा, यातना, सर्कस मालिकों की कुटीलता, कोयला खादानों में काम करने वाले श्रमिकों का शोषण, मैनेजमेंट और यूनियनों की मिलीभगत,

राष्ट्रीय संपत्ति की लुट, डाकू समस्या और डाकू समस्या के मूल में सामंतवादी शोषण के साथ असमान भूमि वितरण प्रणाली, लोक कलाकारों का जीवन, विज्ञान एवं वैज्ञानिकों का दोहन तथा आत्महत्या को विवश भारतीय किसानों की समस्याओं के साथ-साथ रूढ़िवादिता, अंधविश्वास, वर्ण भेद, धार्मिक कर्मकांड, अनैतिकता, अविचार, रहन-सहन, सभ्यता, संस्कृति आदि का चित्रण एंव विश्लेषण अपने उपन्यासों के माध्यम से किया है। अतः यही 'उपन्यास का समाजशास्त्र' है जिसे कुछ आलोचक 'साहित्य का समाजशास्त्र' के नाम से संबोधित करते हैं।

भाषा पर संजीव का जबरदस्त पकड़ है। वे उसे जब चाहे, अपने अनुरूप मोड़ने में सक्षम हैं। उन्होंने अपने कथा-साहित्य में आँचलिक शब्द, मुहावरा, लोकोक्तियाँ, ध्वनयार्थक शब्द, द्विरुक्त शब्द, जोड़े के शब्दों के साथ-साथ विविध शैली और शिल्प को भी अपनाया है। उन्होंने लोककथात्मक, फैंटसी, डायरी, आत्मकथात्मक, वर्णात्मक, पत्रात्मक, फ्लैशबैक, संवादात्मक, प्रतीकात्मक, काव्यात्मक आदि शैलियों का प्रयोग किया है। जीवन के सत्य से प्रेरणा ग्रहण कर उन्होंने कथ्य को मौलिक तथा भाषा को प्रभावात्मक बनाया है। वे हमेशा से मानववादी दृष्टिकोण के पोषक रहे हैं। गरीब, दलित, आदिवासी, किसान, मजदूर और हाशिये पर ढ़केल दिये गये हर एक इन्सान के अंदर चेतना का निर्माण करना उनका साहित्यिक उद्देश्य रहा है इसलिए समाजशास्त्रीय विश्लेषण उनके कथा-साहित्य के केंद्र बिंदु रहे हैं। इसलिए **'संजीव के कथा-साहित्य का समाजशास्त्रीय अनुशीलन'** मेरे शोध कार्य का विषय रहा है।

पहला अध्याय 'साहित्य के समाजशास्त्र का स्वरूप' है। इस अध्याय में समाजशस्त्र की अवधारणा, उसकी परिभाषाएँ, भारत में समाजशास्त्र का विकास एवं उसकी प्रवृत्तियाँ, पाश्चात्य, पारंपरिक एवं दोनों के समन्वित समाजशास्त्रीय परंपरा एवं चिंतन का भारत में प्रभाव, साहित्य के समाजशास्त्र का स्वरूप, साहित्य और समाजशास्त्र का संबंध, साहित्य और साहित्यकार का संबंध, पाठकों के बीच साहित्य, साहित्य में समजाशास्त्र का विरोध, साहित्यानुशीलन की सामाजिक दृष्टि, भारतीय परंपरा, साहित्य का समाजशस्त्र और मादाम स्तेल, साहित्य के समाजशास्त्र की आवश्यकता, साहित्य के समाजशास्त्र की विशेषता आदि पक्षों का विवेचन किया गया है।

दूसरा अध्याय 'संजीव : परिवार, परिवेश, प्रकृति एवं रचना-संसार' में संजीव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर चर्चा की गई है। संजीव का जन्म स्थान, माता-पिता, शिक्षा, विवाह, नौकरी, पारिवारिक और सामाजिक वातावरण, संतान, साहित्यिक बनने की प्रेरणा एवं संघर्ष, ट्यूशन का मकड़जाल, गैर-बराबरी का वातवरण आदि पक्षों का विवेचन किया गया है। जीवन-मूल्य, स्त्री-सम्मान, जिंदादिली-दोस्ती, जिज्ञासु प्रवृत्ति, विकसित दृष्टिकोण इत्यादि इनके व्यक्तित्व की विशेषता रही है। आदर्शवाद, सर्वधर्म समभाव आदि सभी विषयों पर इस अध्याय में समग्रता से विचार किया गया है।

तीसरा अध्याय 'संजीव के उपन्यासों की कथावस्तु का समाजशास्त्रीय विश्लेषण' है। संजीव का एक उपन्यासकार के रूप में परिचय तथा उनके उपन्यास **'अहेर', 'सर्कस', 'सावधान! नीचे आग है', 'धार', 'पाँव तले की दूब', 'जंगल जहाँ शुरू होता है', 'सूत्रधार', 'रह गईं दिशाएँ इसी पार'** तथा **'फाँस'** के कथावस्तु का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है तथा अंत में निष्कर्ष दिया गया है।

चौथा अध्याय 'संजीव की कहानियों की कथावस्तु का समाजशास्त्रीय विश्लेषण' है। समकालीन कहानी में संजीव का स्थान तथा उनकी ग्यारहों कहानी संग्रह **'तीस साल का सफ़रनामा', 'आप यहाँ हैं', 'भूमिका और अन्य कहानियाँ', 'दुनिया की सबसे हसीन औरत', 'प्रेत मुक्ति', 'प्रेरणास्त्रोत और अन्य कहानियाँ', 'ब्लैक होल', 'डायन और अन्य कहानियाँ', 'खोज', 'गुफा का आदमी', 'झूठी है तेतरी दादी'** से प्रमुख कहानियों की कथावस्तु का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है।

पाँचवां अध्याय 'संजीव के कथा-साहित्य में समाजार्थिक चिंतन का स्वरूप' में चिंतन का अर्थ, उसकी परिभाषा, समाज से उसका संबंध, समस्याओं के समाधान ढूँढ़ने में उसकी भूमिका, विभिन्न सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएँ मसलन जाति और वर्ग भेद, अस्पृश्यता, सामंती पूंजीवादी व्यवस्था, भ्रष्ट न्याय व्यवस्था, स्त्री संवेदना, निर्धनता, बेरोजगारी, की समस्या, अर्थ कमाने की समस्या आदि मुद्दों पर चिंतन-मनन किया गया है।

छठवां अध्याय 'संजीव के कथा-साहित्य में आँचलिकता बोध' है। इस अध्याय के

अंतर्गत आँचलिकता का अर्थ, आँचलिकता की परिभाषा, आँचलिकता का महत्व, भौगोलिक स्थिति का वर्णन, भारतीय संस्कृति, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, लोक-संस्कृति, लोकगीत, स्थानीय बोली, रीति-रिवाज, खाप पंचायत, आभूषण, लोककथा, लोकविश्वास, मेला आदि का विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

सातवां अध्याय 'वैश्वीकरण का परिप्रेक्ष्य और संजीव का कथा-साहित्य' है। वैश्वीकरण की अवधारणा, भारत पर वैश्वीकरण का प्रभाव, बड़े मॉल और वृहत उद्योग से दब कर दम तोड़ते छोटे व्यापारी और लघु उद्योग, सामंतवादी और महाजनी सभ्यता का विकसित रूप भूमंडलीकरण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के व्यापार बढ़ाते मध्यवर्गीय प्रतिभा, उपभोक्तावादी संस्कृति की बेतहासा दौड़, नैतिक मूल्यों के पतन का काउंटडाउन, निजीकरण, तीसरी दुनिया को आर्थिक गुलाम बनाने की साजिश, कला और शिक्षा पर भी बाजारवाद का प्रभाव आदि विभिन्न मुद्दों पर इस अध्याय में चर्चा की गई है।

मेरे शोध का **आठवां अध्याय 'संजीव के कथा-साहित्य की भाषा एवं शिल्प विधान'** है। प्रस्तुत अध्याय में संजीव के कथा-साहित्य का भाषागत मूल्यांकन, बुंदेलखंडी, अवधी, गढ़वाली, बांग्ला, हिंदी-उर्दू मिश्रित बोलियों, संथाली बोलियों के साथ-साथ संस्कृत, अपभ्रष्ट देशज, विदेशी, तकनीकी शब्दों का प्रयोग किया गया है। उपमान, मिथक, मुहावरें, लोकोक्तियों के प्रयोग ने भाषा की सुंदरता बढ़ाई है। शिल्प के क्षेत्र में कथावस्तु शिल्प, पात्र एवं चरित्र चित्रण शिल्प, वस्तु शिल्प, संवाद शिल्प, प्राकृतिक वातावरण, भौगोलिक स्थिति, उद्देश्य शिल्प आदि का प्रयोग किया गया है। आत्मकथात्मक, वर्णनात्मक, संवादात्मक, पत्रात्मक, डायरी, पूर्वदीप्ति शैली आदि का सुंदर परिपाक हुआ है।

संपूर्ण अध्याय के अध्ययन एवं विश्लेषण के पश्चात जो निष्कर्ष प्राप्त हुआ है उसे उपसंहार के रूप में प्रस्तुत किया गया है। तत्पश्चात परिशिष्ट एवं संदर्भ ग्रंथों की सूची दी गई है। अंत में शोधार्थी द्वारा लिए गए कथाकार संजीव का साक्षात्कार दिया गया है।

मनुष्य आदिकाल से ही जिज्ञासु प्रवृत्ति का रहा है, उसके इसी प्रश्नाकूल वृत्ति ने उसे खोजी बनाया और शोध प्रक्रिया का जन्म हुआ। शोध में शोधार्थी के द्वारा विषय के बारे में

उपस्थित तथ्यों का अन्वेषण कर यथासंभव सामग्री एकत्रित कर सूक्ष्मता से उनका विवेचन-विश्लेषण कर नवीन सिद्धियों को उद्घाटित करना होता है। इस प्रक्रिया के दौरान शोधार्थी को विभिन्न पुस्तकालयों, विषय से संबंधित विद्वतजनों, कार्यालयों, शोधर्थी मित्रों आदि की सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। अतः इसी प्रक्रिया में सहयोग के लिए मैं सभी के प्रति हृदय से कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

सर्वप्रथम आभार ज्ञापित करता हूँ अपने दिवंगत पिता श्री वसंत रविदास जी का जिनके त्याग, तपस्या और अनुप्रेरणा के बिना मैं कुछ भी नहीं। अगर आज वे होते तो मेरे इस शोधकार्य से निश्चित ही बहुत प्रसन्न होतें। तत्पश्चात् मैं आभार व्यक्त करता हूँ अपनी माँ सोमनी देवी के प्रति जिन्होंने सर्वप्रथम अपनी अंगुली पकड़कर मुझे चलना, बोलना, सिखाया, जो आज भी अपने आशीर्वाद से मुझे हमेशा आगे बढ़ने की प्रेरणा देती रहती हैं।

प्रस्तुत शोध कार्य के कार्यालय सहयोग के अंतर्गत विद्यासागर विश्वविद्यालय के उपकुलपति सुप्रसिद्ध इतिहासविद्य प्रो. रंजन चक्रवर्ती, रजिस्ट्रार प्रो. जयंत किशोर नन्दी, कला एवं वाणिज्य विभाग के डीन प्रो. शिवाजी प्रतिम बासू, सदस्य प्रो. जॅयजीत घोष का मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। प्रस्तुत शोधकार्य की निर्देशिका, विद्यासागर विश्वविद्यालय की भूतपूर्व एवं प्रसीडेंसी विश्वविद्यालय की वर्तमान सहायक प्रध्यापिका, हिंदी की प्रख्यात व्याख्याता, सुप्रसिद्ध कवयित्री डॉ. मुन्नी गुप्ता जी के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। आपने सतत् प्रेरणा एवं निरंतर प्रोत्साहन के माध्यम से इस शोधकार्य में आई हर कठिनाई में मेरा साथ दिया, इसके लिए मैं हृदय से आपका ऋणी हूँ।

विनित हूँ, श्रद्धेय गुरुवर प्रो. डॉ. विजय कुमार भारती जी (प्रो. एवं डीन, काजी नजरूल विश्वविद्यालय, आसनसोल) के प्रति जिन्होंने मुझे दृष्टि संपन्न बनाया। आभार व्यक्त करता हूँ विद्यासागर विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष प्रो. डॉ. दामोदर मिश्र, डॉ. संजय जायसवाल एवं डॉ. प्रमोद कुमार प्रसाद का जिनका आशीर्वाद और प्रेम निरंतर मेरे साथ रहा। कलकत्ता विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्रो. आदरणीय डॉ. अमरनाथ शर्मा जी एवं वर्द्धवान विश्वविद्यालय के भूतपूर्व प्रो. डॉ. विद्याधर मिश्र जी का एक्सपर्ट के रूप में दिए गए उनके सुझावों के लिए मैं

उनको कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

प्रस्तुत शोध कार्य के दौरान मुझे सहयोग करने वाले नेशनल लाइब्रेरी, विद्यासागर विश्वविद्यालय की पुस्तकालय, भारतीय भाषा परिषद, राममंदिर लाइब्रेरी, कुमार सभा लाइब्रेरी, मैत्रेयी ग्रंथागार, राममोहन कॉलेज लाइब्रेरी के सभी सदस्यों के प्रति मैं आभार व्यक्त करता हूँ।

मेरी सहधर्मीणी रेखा कुमारी के प्रति कृतज्ञ हूँ। शोधकार्य के दौरान कठिनाइयों की चुभन निरंतर मेरे साथ सहती रहीं। शोध के दौरान मेरा बेटा प्रियांशु मेरे अभाव की पीड़ा निरंतर सहता रहा। यह मेरी मजबूरी और उसकी नियति रही। इसके अतिरिक्त मेरे परिवार के अन्य सदस्यों, कुछ सहकर्मी तथा शोधार्थी मित्रों का सहयोग भी मुझे समय-समय पर मिलता रहा, इसके लिए मैं उनका आभार व्यक्त करता हूँ। शोध प्रबंध के टंकण का कार्य आत्मीयता और तत्परता से करने वाले राजेश साव जी के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ। शोधकार्य को संपन्न बनाने और मनोबल बढ़ाने में जिन ज्ञात-अज्ञातों की सहायता तथा शुभकामनाएँ मुझे प्राप्त हुईं, उन सबके प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

शोधार्थी

ओम प्रकाश रविदास